International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 22-07-2020; Accepted: 07-08-2020; Published: 23-08-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 4; 2020; Page No. 99-104

आधुनिक, लोकतांत्रिक और डिजिटल भारत में उपेक्षित: किसान

Kumar Madhav

Ph.D in Hindi from The English and Foreign Languages University, Hyderabad, India

प्रस्तावना

भारत एक ऐसा देश है जहाँ विविधता के कई स्तर हैं। जैसे- भाषिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि। इन विविधताओं को एक संविधान के अंतर्गत लाना कठिन कार्य था। किन्तु कुछ लोग थे ऐसे जिन्होंने विरासत में मिले संविधान को और अधिक विस्तृत किया जिससे भारतीय संविधान किसी खास धर्म का दर्पण न बनकर अखंड भारत का दर्पण बने। यदि किसी विदेशी शोधकर्ता को भारतीय संविधान पढ़ने के लिए कहा जाए तो वह ऐसे ही संविधान की कल्पना अपने देश में करेगा जहाँ संविधान सभी धर्म के लोगों को मौलिक आजादी का पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। विरासत में मिले सविधान अभिप्राय भारत शासन अधिनियम 1919 और 1935 से मुख्य रूप से है।

किन्तु जहाँ हम पिछले वर्ष आजादी का सत्तरवीं वर्षगाँठ और इस वर्ष चंपारण-सत्याग्रह का शताब्दी वर्ष उत्साह के साथ कार्यालय, न्यायालय, विद्यालय और विश्वविद्यालय में मना रहे थे, वहीं देश का किसान प्रकृतिक और मानव निर्मित आपदाओं का तांडव झेल रहा था। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम देश की जनता में राष्ट्रगौरव का भाव उत्पपन्न न करें। लेकिन सरकार द्वरा किए जा रहे 'सड़क मार्च' और उस पर खर्च से ज्यदा भारत के पुस्तकालय में संग्रहीत पुस्तकों के माध्यम से लोगों को ज्यादा राष्ट्रवादी बनाया जा सकता है। लेकिन अपनी विफलता पर चादर डालने के लिए इस प्रकार के 'पिपली लाइव' कार्यक्रम प्रसारित किए जाते है।

लेकिन पुनः प्रश्न उठता है कि क्या भारत, शहर के कार्यालय, न्यायालय, विद्यालय और विश्वविद्यालय तक ही सीमित है।

भारत की विविधता का राग सरकार हमेशा गाती है और जनता से सरकार यही उम्मीद करती है कि वह भी विविधता के गीत को बाथरूम से सड़क तक गुनगुनाते रहें। प्रत्येक वर्ष किसी न किसी रूप से सड़क और मैदान महोत्सव के विज्ञापन के लिए रुपए खर्च किए जाते हैं, लेकिन विज्ञापन भी तभी प्रासंगिक रहता है जब उसमे थोड़ा यथार्थ हो।

वर्ष 1965 में पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने एक नारा दिया था 'जय जवान, जय किसान'। इस नारे की प्रासंगिकता को देखते हुए पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इसमें थोड़ा विस्तार किया और इसमें 'जय विज्ञान' जोड़ा। किन्तु इस नारे का एक महत्त्व है। समझने की बात यह है कि यह एक नारा है, न कि विज्ञापन। इस नारे का इतिहास है। 1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद जीत के उल्लास में देश के 'प्रधान सेवक' ने इस नारे को दिया था और दूसरे 'प्रधान सेवक' ने इसे विस्तार किया । किन्तु इक्कीसवीं सदी का भारत बीसवीं सदी के भारत से अलग है। अब नारा नहीं, विज्ञापन दिया जाता है। विज्ञापन के माध्यम से ही 'बागों में बहार लाया' जाता है।

जिसके संबंध हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक रामकुमार वर्मा ने लिखा था "विद्यापति का संसार ही दूसरा है। वहाँ सदैव कोकिलायें ही कूंजन करती हैं। फूल खिला करते है पर उसमे कांटे नहीं होते। राधा रातभर जागा करती है। उसके नेत्रों में ही रात समा जाती है। शरीर के सौंदर्य के सिवाय कुछ भी नहीं है, पथ हैं, उसमें भी गुलाब है शैया है उसमें भी गुलाब है शरीर है उसमें भी गुलाब, उसके संसार में फूल फूलते हैं कांटे का अस्तित्व नहीं है।" इसलिए सरकार के अभिनवदेव मीडिया से लेकर मंच तक इन कार्यकर्मों का कविता पाठ करते है।

सरकार की अपेक्षा रहती है कि लोकतंत्र में सामांत युग के जैसा बुद्धिजीवी तबका हो। ऐसा कहना भी गलत है कि स्तुतिगान करने वाले बुद्धिजीवियों की कमी है। इसका प्रभाव भारत के किसान पर पड़ता है और वह हर मोड पर खुद को अकेला पाता है।

सरकार और किसान

भारत एक एक लोकतान्त्रिक देश है। जनता सरकार को प्रत्येक पाँच वर्ष में लोक सभा से ग्राम सभा तक चुनती है। विजयी दल लोक कल्याण के लिए कई योजनाए लेकर भी आती है। जैसे वर्तमान में केंद्र सरकार के द्वारा प्रमुख योजनाएँ:

- कृषि विपणन
- कृषि जनगणना
- बजट
- सहयोग
- श्रेय
- फसलें और एनएफएसएम
- सूखा प्रबंधन

- आर्थिक प्रशासन
- एक्सटेंशन
- सामान्य प्रशासन
- जनरल समन्वय
- बागवानी
- सूचान प्रौद्योगिकी
- समेकित पोषण प्रबंधन
- अंतरराष्ट्रीय सहयोग
- आधिकारिक भाषा
- मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी
- प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन
- तिलहन प्रभागों
- योजना के समन्वय
- प्लांट का संरक्षण
- नीति
- वर्षा आधारित खेती प्रणाली
- राष्ट्रीय कृषि विकास योजना
- बीज
- व्यापार
- जागरूकता

उपर्युक्त सरकारी विवरण देखकर लगता है कि देश में किसानों की कोई समस्या ही नहीं है। इस विवरण को देख कर भारत को बाहर से देखने वाले संगठन या फिर इंटरनेट के माध्यम से भारत दर्शन करने वाले उपभोक्ता को खुश होने की जरूरत है न कि सतह पर कम करने वाले मजदूर या किसान को। यदि इस विवरण में यथार्थ होता तो देश का कोई भी आत्महत्या या धारणा प्रदर्शन नहीं करता।

सरकारी योजना का उल्लेख किए बिना यह प्रपत्र सिर्फ सिक्के एक पहलू को उजागर करता न कि दोनों पहलू को। किन्तु ।

सरकार की अपेक्षा रहती है कि लोकतंत्र में सामांत युग के जैसा बुद्धिजीवी तबका हो। आजादी के बाद देश में जिसकी भी सरकार रही हो सभी को आदिकाल के अभिनव जयदेव की आवश्यकता है। सत्ता मे बैठे लोगों को 'धूमिल' की आवश्यकता नहीं है। किन्तु धूमिल के कविता की पंक्ति से इन योजनाओं के यथार्थ को समझ सकते है-

अपने यहां संसद -

तेली की वह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है।
सरकार, किसान और कर

सरकार के द्वारा हमेशा अलग- अलग प्रकार का विज्ञापन किया जाता है। जब किसी योजना को मीडिया में प्रधानता नहीं दी जाती है, तो सरकार विज्ञापन का सहारा लेती है। मीडिया घराना चुनाव प्रचार में जितना अधिक रूचि लेती है, उसका 10% भी सरकार के सामाजिक कल्याण योजना में ले तो देश के आम जन का आवश्य भला होगा। मीडिया घराना ऐसा नहीं करती है इसके पीछे का राजनीति कुछ और है जैसे- सरकार के द्वारा दिये जाने वाला विज्ञापन जिससे मीडिया हाउस बहुत बड़ी रकम की उगाही करती है। यदि मीडिया हाउस योजनाओं का जमीनी स्तर से खबर जुटाये तो सरकारी योजना का सच भी हमारे सामने आएगा। लेकिन दिल्ली में बैठे पत्रकार के लिए यह असंभव है। क्योंकि भारतीय राजनीति में नब्बे के दशक के बाद सरकार के साथ ये निजी घराने भी अप्रत्यक्ष रूप से गठबंधन करते आ रहे है। ऐसे में अपने आकाओं के बारे में सच लिखना लोहे के चने चबाने जैसा है।

किन्तु दबाब समहूह के द्वारा सरकार पर लगातार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से किसानो को मिलने वाली प्रत्यक्ष कर की छूट को समाप्त करने की वकालत की जा रही है और मीडिया के माध्यम से एक तबका जनमत बनाने का कार्य कर रहा है कि किसानों को भी प्रत्यक्ष कर के दायरे में लाना चाहिए। आने वाले समय में यह किया भी जा सकता है।

जल और किसान

भारत में किसान को स्थिति सुधारने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए किन्तु धरातल पर पूर्ण रूप से स्थिति कभी नहीं सुधरी है। संवैधानिक रूप से जहाँ सभी को बराबरी का दर्जा प्राप्त है, वहीं भौगोलिक रूप से यह विषमताओं से भरा पड़ा है। इसलिए भारत की विविधता के अनेक रंग हैं। बिहार का किसान बाढ़ से परेशान रहता है, तो तमिलनाडु और कर्नाटक के बीच कावेरी जल विवाद हमेशा सुर्खियों में रहता है। ग्राम न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय तक सभी को इस मुद्दे पर विफलता ही अभी तक हाथ लगी है। महानदी, कृष्णा, कावेरी विवाद से जहाँ भारतीयता को खतरा उत्तपन्न हो जाता है, वहीं दूसरी ओर ब्रह्मपुत्र (त्सांगपो), सिंधु, गंगा और तीस्ता से मानवता पर संकट के काले बादल छा जाते हैं।

स्वतंत्रता के सत्तर वर्ष बाद भी भारतीय किसान की विडम्बना है कि वह आधुनिक शिक्षा से दूर है। किसान मेहनती होते हैं, यह बचपन से हमें सुनाया जाता है किन्तु किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती करते हैं या फिर किसान को कृषि विश्वविद्यालय भेजा रहा है, इस प्रकार की कहानी सिर्फ सरकारी योजनाओं तक ही सीमित रहती है।

इस प्रकार की नीति के क्रियान्वित नहीं होने कारण भी किसान के

जीवन में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिनकी मार किसान ही झेलता है।

मुख्य धारा की मीडिया और किसान

नैसर्गिक असामनता को वैज्ञानिक ढंग से सुधारने के स्थान पर किसानो की आँसुओं का मुख्यधारा के मीडिया में विज्ञापन किया जाता है और इसे बेचा जाता है। इस प्रकार लगता है जैसे देश में कोई दुखिया किसान महोत्सव चल रहा है। किन्तु इस विज्ञापन में एक तरफ हमारे नेता नायक से ईश्वर बन जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ किसानों की स्थिति वैसे ही रह जाती है। वे ऐसी कृपा करते हैं कि दस से बीस दिन में सभी उलझे मामले को सुलझा देते हैं। मुख्यधारा की मीडिया से मुद्दा कुछ इस प्रकार गायब होता है जैसे नायक फिल्म के अभिनेता अनिल कपूर ने 24 घंटे में वो सब कुछ कर दिया जो पिछले वर्ष तक नौरंगी लाल के सपने जैसा था। मुख्यधारा के बुद्धिजीवी जो सभी क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं, वे नए विषय लेकर टी.वी. चैनल पर व्याख्यान देते हैं।

यह आरोप लगाना भी गलत है कि सभी समाचार-पत्र और टी.वी. चैनल पर एक ही लहर होती है। उदाहरण के लिए इस वर्ष दिल्ली में आए तमिल किसान के मुद्दों को कुछ चैनलों ने जहाँ पहले ही महत्त्व दिया, वहीं ज्यादातर टी.वी. चैनल स्वयं के मूत्र पीने पर उन्हें प्राथमिकता प्रदान की। अर्थात् लोकतंत्र के चौथे खंभे को जगाने के लिए किसी को मूत्र पीने की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

विजयदेव नारायण साही की कविता प्रार्थना : गुरु कबीरदास के लिए की कुछ पंक्ति मुख्यधारा के मीडिया के लिए प्रासंगिक है-

परम गुरु
दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अंतहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अंतहीन सहानुभूति
पाखंड न लगे।

कुछ चैनल और अखबार ऐसे हैं जो सतह से खबर को उठाते हैं। किन्तु इन अखबारों ओर समाचार चैनल को पढ़ने और देखने वाले की संख्या न के बराबर है। उदाहरण के लिए कुछ समाचार-पत्र जैसे- द हिन्दू, इंडियन एक्सप्रेस, जनसत्ता आदि। जहाँ एक तरफ 25% के आस-पास की आबादी भारतीय भाषा को ही पढ़ने में ही असक्षम है तो वहाँ अंग्रेजी के समाचार-पत्र और उनमें भी विशेष रूप से 'द हिन्दू' की 'संस्कृतनिष्ठ अंग्रेजी' भारतीय शिक्षा व्यवस्था से अभी दूर है। चैनल की गाथा गाने से बेहतर है कि भारतीय मीडिया की निष्पक्षता को अंतरराष्ट्रीय मानकों से देखा जाए। 'रिर्पोटर्र विदाउट बार्डर' जो कि एक अंतरराष्ट्रीय संस्था है, जिसकी सूची में भारतीय मीडिया को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 180 देशों की सूची में 133वाँ स्थान प्राप्त हुआ है। यदि यह स्थान 180वाँ होता तो हम सभी पत्रकार, टी.वी. चैनल और समाचार-पत्र पर आरोप लगा सकते थे, किन्तु स्थिति जश्न मनाने लायक भी नहीं है

साहित्य और किसान

किसान जीवन के सुख-दुःख को भारत में ही नहीं, विश्व में अन्य की तुलना में सबसे अधिक किसी ने महत्त्व दिया है तो वह कवि और लेखक हैं। भारतीय किसान के संबंध में भी यह बात बिलकुल सत्य है। सभी भारतीय भाषाओं में किसान के मुद्दे पर अलग-अलग रचनात्मक शैली में नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, रिपोतार्ज आदि लिखे गए हैं। किन्तु साहित्य की इन संपदाओं ने किसान की कंगाली को दूर नहीं किया है। वैसे भी साहित्य सामाजिक समस्याओं को उठता है, न कि उसका निराकार करता है। किन्तु समस्याएँ तब अधिक विकराल हो जाती हैं जब समस्या से ग्रसित व्यक्ति को सिर्फ इतना बताया जाता है कि सत्ता-परिवर्तन करो, समस्याओं का हल हो जाएगा, जो कि पिछले सत्तर सालों से हो रहा है। क्रम से भारतीय राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति प्रधानमंत्री, और मुख्यमंत्री की सूची देखने लिए विकिपीडिया का सहारा लिया जा सकता है। एक तरफ भारतीय किसानों नें जहाँ आपातकाल जैसी स्थिति से खुद को बाहर निकाल कर पुनः नए नायक पैदा किए, वही दूसरी तरफ वह खुद की परिस्थिति को बदल नहीं पाया।

किसान की समस्याओं का हल बाबू के फ़ाइल से नहीं बल्कि साहित्यकार के रचनाओं में व्यक्त अभिव्यक्ति से निकालना होगा जो कि एक घटना से पूरे भारत की स्थिति को बयाँ करने में सक्षम हो जाता है। देश के बाबू और नेता को किसान से जुड़ी रचनाओं के साथ समन्वय करना होगा।

किसान, मजदूर और निम्नवर्ग को केंद्र में रखकर स्वन्त्रता के पूर्व और बाद में कई साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया। प्रेमचंद ने गोदान के माध्यम जिस प्रकार किसान के जीवन के आस-पास स्थित सभी समस्याओं को ढूँढने का प्रयास किया। उनके उत्तरवर्ती उपन्यासकारों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। बाद के उपन्यासकारों में अनेक नाम हो सकते हैं किन्तु कुछ नाम बहुत महत्त्वपूर्ण हैं जिनकी रचना और रचनाकार का नाम लिखे बिना यह शोध-प्रपत्र अधूरा रहेगा। साहित्यकारों के नाम कुछ इस प्रकार हैं - यशपाल, नागार्जुन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, शिवप्रसाद सिंह,रामदरश मिश्र, राही मासूम रज़ा, श्रीलाल शुक्ल, मार्कण्डेय, उदयशंकर भट्ट, फणीश्वर नाथ रेणु आदि। ऐसे और भी लेखक हैं जिनके नाम ढूँढे जा सकते हैं।

बाबा नागार्जुन का 'बलचनमा', भैरव प्रसाद गुप्त का 'गंगा मैया', वृन्दावनलाल वर्मा का 'अमर बेल', शिव प्रसाद मिश्र का 'अलग-अलग वैतरणी', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ' और राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव' - इन सभी उपन्यासों में किसान की समस्याओं को उठाया गया है एवं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इसके कारण को भी

बताया गया है। वर्तमान समय में सभी समस्याओं का हल आयोग के माध्यम से निकाला जाता है। आयोग हमेशा घटना के बाद बनाया जाता है लेकिन साहित्यकार की रचना में छिपा हुआ सच वर्तमान और अतीत दोनों का यथार्थ को बताता है। इसलिए ऐसे कई साहत्यिक रचनाएँ हैं जिनके माध्यम से सामाजिक समस्याओं को दूर किया जा सकता है। लेकिन हमारी सोच थोड़ी अलग है हम अन्य देशों की अपेक्षा अलग सोचते हैं। जैसे- प्रेमचंद द्वरा रचित गोदान जो कि वर्ष 1936 में लिखा गया था, उसकी प्रासंगिकता आजादी के 10 वर्ष बाद ही समाप्त हो जानी चाहिए थी किन्तु हम महान देश के महान देशभक्त हैं कि इस प्रतीक्षा में वर्ष 1936 में इस उपन्यास का शताब्दी समारोह मनाएँगे जिस प्रकार इस वर्ष चंपारण सत्याग्रह को मनाए। आज का किसान भले ही नील की खेती न करता हो लेकिन वह उससे भी अधिक खतरनाक अन्न उगा रहा है। जैसे- जी.एम. फसल यानी जेनेटिकली मोडीफाइड या हिंदी में कहें जैविक रूप से कृत्रिम तरीके से बनाई गईं फसल बीज। यदि किसी कृषि वैज्ञानिक से पूछा जाए तो वह नील और जेनेटिकली मोडीफाइड में बेहतर तरीके से किसान को समझा सकता है। ऐसा नहीं है कि किसान ने जेनेटिकली मोडीफाइड बीज के कंपनियों के खिलाफ धरने या प्रदर्शन न किया हो। बात स्पष्ट हो जाती है कि अभी भी देश के किसानों के मुद्दे सही से सुलझाए नहीं गए हैं। इसलिए सरकार भले ही चंपारण सत्याग्रह मनाए लेकिन इस सत्याग्रह के पीछे की राजनीति गांधी की विचारधारा को आगे लाने का नहीं बल्कि गांधी के नाम पर वोट माँगने का है। बाबू, बनिया नेता सभी जानते हैं कि गांधी कि विचारधारा को आगे लाने से बेहतर विकल्प है कि गाँधी के तस्वीर को सामने लाओ। यह प्रचलन नोट से प्रारम्भ हुआ फिर आप्रवासी दिवस, मानरेगा, स्वच्छ भारत अभियान और चंपारण सत्याग्रह तक जा पहुँची है।

जिस कार्य को सरकार पिछले सत्तर वर्ष में नहीं कर पायी है, उस कार्य को कुछ साहित्यकारों ने आजादी से पहले ही कर दिया और कुछ ने बाद में किया और कुछ साहित्यकारों के कार्य की रेलगाड़ी अभी भी चल रही है। भारतीय साहित्य के महत्त्व संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग जानती है। इसलिए साहित्य के पाठ्यक्रम किसान और सामाजिक समस्याओं से जुड़े उपन्यास को स्थान देती है। हो सकता है आने वाले समय गुलशन नन्दा के उपन्यास को भी स्थान दिया जाए लेकिन अभी तक ऐसा नहीं हुआ। गोदान और अन्य भारतीय उपन्यासों की अपेक्षा गुलशन नन्दा और चेतन भगत के उपन्यास ज्यादा बिकते हैं। इस उपन्यास में भी कुछ कल्पना और कुछ सच्चाई होती है लेकिन यह अभी तक इन उपन्यासों के विषय को पूरे भारत का दर्पण नहीं माना गया है। महावीरप्रसाद द्विवेदी का कथन कि 'साहित्य समाज का दर्पण होता है', इन उपन्यासों के लिए अप्रासंगिक हो जाता है। उदाहरण के लिए चेतन भगत का उपन्यास 'टू स्टेट्स' इस कहानी के दर्द को वही पाठक महसूस कर सकता है जिसने भारतीय प्रबंध संस्थान के जैसे संस्थान में पढ़ाई की हो या जिसने उत्तर भारत या दक्षिण भारत के लड़के या लड़की से प्रेम किया हो जहाँ भारतीय समाज में अपने ही जाति में अपनी मर्जी से विवाह करने पर हाय-तौबा मचता है, वहीं दूसरे राज्यों में जहाँ धर्म, जाति, भाषा, रंग खान-पान की विविधता हो वहाँ इस प्रकार की घटना सपनों के ही भारत में अच्छी लगती है।

किन्तु किसान, जाति, भाषा से जुड़े मुद्दों की समस्याएँ सभी समाज में हैं। इसलिए एक बाबू बनने वाले उम्मीदवार से उम्मीद की जाती है कि वह इन उपन्यासों के माध्यम से समाज को कितना समझता है! संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग जिस भाषा का विकल्प प्रदान करता है उसमें लिखित भारतीय साहित्य जिसमें भारतीय संस्कृति, व्यवस्था और इतिहास का सचित्र वर्णन होता है, उसको पाठ्यक्रम में शामिल करता है। अपवाद की घटनाएँ हमेशा घटती हैं।

यदि इस उपन्यास को किसान भी पढ़ता तो वह अपने समाज की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक परिस्थिति को समझ सकता है लेकिन ऐसा करने में वह अक्षम है। इस व्यवस्था ने उसे शिक्षा से दूर रखा। कृषि शिक्षा या उच्च शिक्षा तो बहुत दूर है। अभी प्राथमिक शिक्षा का ही उसके ग्राम में आगमन नहीं हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार, अभी भारत से ही दूर तो उसमें यह कहना कि शिक्षा सभी भारतीय का मौलिक अधिकार है। संविधान मौलिक अधिकार की गारंटी प्रदान करती है। तो यह कहना गलत नहीं होगा कि हुज़ूर पहले प्राथमिक शिक्षा और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को भारत तक लाएँ, हम भारतीय जुगारू हैं।

किसान और राष्ट्रवाद

भारत की राजनीति में किसान आन्दोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्हीं किसानों का नेतृत्व करके कोई राष्ट्रपिता बना तो कोई सरदार। ऐसे कई उपाधियाँ इन किसानों ने अपने नेतृत्वकर्ता को प्रदान किए जो वर्तमान समय में प्रतियोगी परीक्षाओं में पूछे जाते हैं। उदाहरण के लिए वल्लभ भाई पटेल को किस आंदोलन के बाद सरदार की उपाधि दी गयी? इन नेताओं ने किसान के दर्द में सहानुभूति भी दिखाई और स्वानुभूति का भी अनुभव किया। किन्तु वर्तमान समय में परिस्थिति बदल गई है। दो दशक में शायद ही कोई किसान नेता हो जिसने खेत से संसद तक सफर तय किया हो। यहाँ भी बड़े दलों ने कब्जा कर लिया है। प्रमुख किसान दल किसी न किसी रूप से राष्ट्रीय दल का हिस्सा हैं। यह सत्य है कि कोई भी लड़ाई संगठित होकर लड़ना चाहिए। किन्तु आज का यथार्थ थोड़ा अलग है। किसानो को दलबंदी तो किया जाता है लेकिन किसान नेता किसानों के हक लिए नहीं बल्कि अपने फायदे और राजनीतिक दलों को मजबूती प्रदान करने के लिए आंदोलन करवाते है।

किसान अभी तक यह समझने में पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हो पाये है कि अब कानून से ज्यादा इन दलों का हाथ लंबे हो गए है। जिनकी पहुँच

विश्वविद्यालय की राजनीति से लेकर किसान की राजनीति तक है। भारत में किसान एक तरफ जहाँ सूखे और ऋण जैसी समस्या से खुदकुसी कर रहा है , राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर उस पर गोलियाँ भी चलायी जा रही तो दूसरी तरफ किसान के बेटे की शरहद पर शहीद हो रहा है। एक तरफ सरकार शहादत की राजनीति करती फिरती और दूसरी तरफ किसान की। इस प्रकार की घटना पर धूमिल की कविता काफी प्रासंगिक हो जाती है।

यह मेरा देश है
और यह मेरे देश की जनता है
जनता क्या है?
एक शब्द...सिर्फ एक शब्द है:
कुहरा,कीचड़ और कांच से
बना हुआ...
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठण्ड के लिये
अपनी पीठ पर
ऊन की फसल ढो रही है।

किसानों की हत्या और ज़बानों का शहीद होना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। जिसे सरकार रोक नहीं सकती है बल्कि इस प्रकार की घटना का प्रमुख कारण स्पष्ट योजनाओं के अभाव के कारण से होता है। आज भी भारत के योजना बनाने वाले विद्वान भारतीय कम इंडियन ज्यादा है। इन्हे लोक सेवा से ज्यादा सत्ता सेवा पसंद है। इन बाबूओं के लिए लॉर्ड मैकाले का कथन आज भी प्रासंगिक है-

“हमे ऐसा वर्ग बनाने कि लिए जी- जान से प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और उन करोड़ो लोगो के बीच जिन पर हम शासन करते है, दुभासिए का कम कर सके; यह उन लोगों का वर्ग जो रक्त और रंग की दृष्टि से भारतीय मगर रूचि, विचारों आचरण तथा बुद्धि के दृष्टि से अंग्रेज़ हों।”

इस आरोप में कुछ बाबू अपवाद भी हैं जिंहोने बाबू से ज्यादा लोक सेवक की भूमिका निभाई है। जिलों और कस्बों में किसानों और मजदूरों के द्वारा ऐसे लोक सेवकों का हमेशा याद किया जाता है। लेकिन यह संख्या 125 करोड़ के आबादी वाले देश में कुछ उसी तरह है जैसे राई के दानों में सुई ढूंढा जाए।

मानसदपुर में जिस प्रकार पुलिस के गोली से किसानों के आंदोलन को रोका गया। इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि सत्ता का चरित्र किसानों के लिए हमेशा एक रहा है। गोली किसी पर भी चल सकती है भले वह भारतीय किसान हो या ‘रेड जोन’ से विद्रोह करने वाला आदिवासी। पहले गोली चलाने का आदेश होता है और फिर मुआवजा देने की घोषणा की जाती है।

निष्कर्ष

इस शोध-प्रपत्र के द्वारा वर्तमान में किसानों की समस्याओं को समझने का प्रयास किया गया है। यह कहना भी गलत होगा कि सरकार योजनाएँ नहीं बना रही है। किन्तु कई प्रकार से लालफीतासही इन योजनाओं को बाधित करती है। इस प्रकार योजनाएँ सिर्फ टेलीविज़न, समाचार पत्र और बाबू के फ़ाइल तक ही रह जाती है। किसान एक साथ अनेक समस्याओं से ग्रसित है। मुख्य धारा का मीडिया जनपथ से ज्यादा राजपथ पर अपना बसेरा बनाए हुए है। ऐसे में सरकार की नीति और किसान की समस्याओं को दिल्ली से ही समझने का प्रयास किया जाता है। सतह पर कम करने वाले कार्यकर्ताओं को न्यूज रूम में कम पुलिस चौकी में जाएदा बुलाया जाता है। न्यूज रूम में आने वाले विद्वान अपने ज्ञान को भारतीय भाषा में कम अंग्रेजी में ज्यादा समझाते हैं। हिंदी भाषी दर्शक को संस्कृत के श्लोक से रूबरू कराते है।

ऐसे विद्वान को कालिदास कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। क्योंकि सुबह से शाम तक ये सभी चैनल पर अपना समय देते रहते है। दिल्ली से कभी बाहर निकलते नहीं है। लेकिन जब बोलते है तो लगता है सभी विषय के ज्ञाता हो। कुछ समय आरोप- प्रत्यारोप में बिता देते है। कुछ समय अपने दल के गाथा गाने में । कुछ इसी प्रकार होती है चर्चा हमारे देश में किसानों पर।

संदर्भ सूची

1. अपनी माटी किसान विशेषांक (अनुक्रमणिका:'अपनी माटी' का 25वाँ अंक 'किसान विशेषांक)
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी एवं सुधा सिंह; मीडिया सिद्धांतकार-2 (मीडिया, प्राच्यवाद और वर्चुअल यथार्थ); अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण - 2008)
3. जगदीश्वर चतुर्वेदी; हाइपरटेक्स्ट वर्चुअल रियलिटी और इंटरनेट; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली (प्रथम संस्करण - 2006)
4. जवरीमल्ल पारख; साझा संस्कृति; सांप्रदायिक आतंकवाद और हिंदी सिनेमा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (संस्करण - 2012)
5. टी.डी.एस. आलोक; इलेक्ट्रॉनिक मीडिया; अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली (संस्करण-2009)
6. धूमिल; संसद से सड़क तक; राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली (पहला संस्करण - 1972, छठा संस्करण-1990, सातवीं आवृत्ति-2009
7. रामचन्द्र गुहा; भारत : गांधी के बाद (अनुवाद- सुशांत झा); पेंगुइन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, गुड़गाँव (हरियाणा), (प्रथम संस्करण-2012, आवृत्ति-2014)

8. रामचन्द्र गुहा; भारत : नेहरू के बाद (अनुवाद- सुशांत झा); पेंगुइन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, गुड़गाँव (हरियाणा), (प्रथम संस्करण-2012, आवृत्ति-2014)
9. बिपिन चन्द्र आधुनिक भारत का इतिहास ओरिएंट प्रकशन हैदराबाद
10. इंटरनेट सामाग्री
11. http://www.bbc.com/hindi
12. http://kavitakosh.org/
13. http://agricoop.nic.in/hi/programmes-schemes-listing
14. http://www.apnimaati.com/2017/11/25.html